IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

"स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना : बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष्य का अध्ययन"

रेनू यादव
शोधार्थी, हिन्दी साहित्य
जे.एस.विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद

डॉ. गुड्डू कुमार
आचार्य, हिन्दी विभाग
जे.एस.विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद

सारांश –

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप समय के साथ गहराई और विस्तार प्राप्त करता है, जहाँ यह केवल स्वतंत्रता की उपलब्धि का उत्सव नहीं रह जाता, बल्कि समाज के भीतर चल रहे सूक्ष्म परिवर्तनों, संघर्षों और द्वंद्वों को भी अपने भीतर समाहित कर लेता है। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत एक ऐसे दौर में प्रवेश करता है, जहाँ राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिा केवल राजनीतिक स्तर तक सीमित नहीं रहती, बल्कि यह सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक पहचान और मानवीय संबंधों के पुनर्गठन से भी जुड़ जाती है। इसी संदर्भ में अज्ञेय और यशपाल के साहित्य का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। अज्ञेय के साहित्य में व्यक्ति की आंतरिक स्वतंत्रता, अस्तित्व और आत्मबोध के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना को समझने का प्रयास किया गया है। जबकि यशपाल के लेखन में सामाजिक असमानता, वर्ग संघर्ष और राजनीतिक यथार्थ के माध्यम से राष्ट्र की वास्तविक स्थिति को उजागर किया गया है। उदाहरण के रूप में अज्ञेय की रचनाओं में व्यक्ति की स्वतंत्रता को राष्ट्र की स्वतंत्रता से जोड़ा गया है। जहाँ वे संकेत करते हैं कि स्वतंत्रता का अर्थ केवल बाहरी बंधनों से मुक्ति नहीं, बल्कि आंतरिक चेतना का जागरण भी है। इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में राष्ट्रीय चेतना एक बहुपक्षीय अवधारणा के रूप में उभरती है।, जिसमें व्यक्ति और समाज दोनों की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है।

की-वर्ड्स –

राष्ट्रीय चेतना, स्वातंत्र्योत्तर, हिन्दी साहित्य, सांस्कृतिक चेतना, बहुपक्षीय अवधारणा, व्यक्ति एवं समाज।

भूमिका –

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य का आरंभ एक ऐसे समय में होता है। जब देश स्वतंत्र हो चुका था, किन्तु उसके सामने अनेक जटिल चुनौतियाँ उपस्थित थी। विभाजन की पीड़ा विस्थापन की समस्या, आर्थिक असंतुलन और सामाजिक विघटन ने राष्ट्र की संरचना को भीतर से प्रभावित किया। इस परिवेश में साहित्यकारों ने केवल घटनाओं का वर्णन नहीं किया, बल्कि उन्होंने उन भावनाओं और अनुभवों को शब्द दिए, जो उस समय के समाज में व्याप्त थे। स्वातंत्र्योत्तर संदर्भ में राष्ट्रीय चेतना का अर्थ केवल राष्ट्र के प्रति प्रेम व्यक्त करना नहीं रह जाता, बल्कि यह समाज की वास्तविक स्थिति को पहचानने, उसकी समस्याओं को स्वीकार करने और उनके समाधान की दिशा में सोचने का माध्यम बन जाता है। यशपाल की क़ति "झूठा सच" में विभाजन के बाद के समाज का जो चित्रण मिलता है, वह इस बात का प्रमाण है कि स्वातंत्र्योत्तर भारत में राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप कितना जटिल और बहुआयामी हो गया था। उदाहरण के रूप में वे लिखते हैं कि समाज में उत्पन्न विघटन केवल बाहरी नहीं बल्कि आंतरिक भी है। जो व्यक्ति के विचारों और संबंधों को प्रभावित करता है। इस प्रकार भूमिका में यह स्पष्ट किया जा सकता है कि

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य राष्ट्रीय चेतना को एक नई दृष्टि प्रदान करता है, जो यथार्थ और संवेदना दोनों का समन्वय है।

अवधारणा –

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना की अवधारणा को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम इसे केवल राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में न देखें, बल्कि इसे सामाजिक और मनोवैज्ञानिक स्तर पर भी समझने का प्रयास करें। स्वतंत्रता से पूर्व राष्ट्रीय चेतना का केन्द्र विदेशी शासन के विरूद्ध संघर्ष था, किन्तु स्वतंत्रता के बाद यह चेतना राष्ट्र के भीतर मौजूद समस्याओं की ओर उन्मुख हो जाती है। इस संदर्भ में अज्ञेय का दृष्टिकोण अत्यंत महत्वपूर्ण है। जहाँ वे व्यक्ति की स्वतंत्रता और उसकी चेतना को राष्ट्र की प्रगति से जोड़ते हैं। उनकी रचनाओं में यह विचार बार-बार उभरकर आता है कि यदि व्यक्ति स्वयं जागरूक नहीं है, तो राष्ट्र की प्रगति भी संभव नहीं है। उदाहरण के रूप में उनकी एक पंक्ति –

"मनुष्य की स्वतंत्रता ही उसकी सबसे बड़ी जिम्मेदारी है।"

यह पंक्ति स्पष्ट करती है कि राष्ट्रीय चेतना का आधार व्यक्ति की आंतरिक चेतना में निहित है। इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप अधिक गहन और चिंतनशील हो जाता है।

सामाजिक परिप्रेक्ष्य –

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का एक महत्वपूर्ण पक्ष सामाजिक यथार्थ से जुड़ा हुआ है। स्वतंत्रता के बाद समाज में जो परिवर्तन आए, उन्होंने साहित्य को गहराई से प्रभावित किया। गरीबी, बेरोजगारी, वर्ग संघर्ष और सामाजिक असमानता जैसे मुद्दे साहित्य के केन्द्र में आ गए। यशपाल के साहित्य में यह सामाजिक यथार्थ अत्यंत प्रभावशाली रूप में सामने आता है। उनकी रचनाओं में यह स्पष्ट किया गया है कि राष्ट्र की वास्तविक प्रगति तभी संभव है, जब समाज के सभी वर्गों को समान अवसर प्राप्त हो। उदाहरण के रूप में वे लिखते हैं – "असमानता ही समाज के विघटन का मुख्य कारण है।" यह विचार इस बात को रेखांकित करता है कि स्वातंत्र्योत्तर राष्ट्रीय चेतना केवल आदर्शों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह वास्तविक समस्याओं को समझने और उन्हें दूर करने की दिशा में प्रयास करने का आह्वान भी करती है।

सांस्कृतिक आयाम –

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का एक महत्वपूर्ण आयाम सांस्कृतिक चेतना से भी जुड़ा हुआ है। स्वतंत्रता के बाद यह प्रश्न उठने लगा कि भारतीय संस्कृति की पहचान क्या है, और उसे किस प्रकार सुरक्षित रखा जा सकता है। अज्ञेय के साहित्य में यह सांस्कृतिक विमर्श अत्यंत सूक्ष्म रूप में उपस्थित है। वे यह मानते हैं कि संस्कृति केवल परंपराओं का संग्रह नहीं है, बल्कि यह एक जीवंत प्रक्रिया है, जो समय के साथ विकसित होती रहती है। उदाहरण के रूप में उनकी रचनाओं में यह विचार व्यक्त किया गया है कि संस्कृति वह धारा है जो व्यक्ति को उसके मूल से जोड़ती है। इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का सांस्कृतिक आयाम राष्ट्र की पहचान और उसके अस्तित्व को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि –

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना को केवल बाहरी परिस्थितियों के आधार पर नहीं समझा जा सकता, बल्कि इसके मनोवैज्ञानिक पक्ष को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। स्वतंत्रता के बाद व्यक्ति के भीतर जो असुरक्षा, भय और असंतोष उत्पन्न हुआ, उसने उसके मानसिक संसार को प्रभावित किया। अज्ञेय के साहित्य में यह मनोवैज्ञानिक द्वंद्व स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।, जहाँ व्यक्ति अपने अस्तित्व और पहचान के प्रश्नों से जूझता हुआ नजर आता है। उदाहरण के रूप में उनकी रचनाओं में यह संकेत मिलता है कि व्यक्ति का संघर्ष ही उसकी पहचान का निर्माण करता है। यह दृष्टिकोण राष्ट्रीय चेतना को एक गहरे स्तर पर समझने में सहायक है।

स्वंतत्रता के बाद उभरती नई सामाजिक चुनोतियाँ

भारतीय साहित्य सदैव अपने समय और समाज की संवेदनाओं का प्रतिनिधि रहा है। राजनीतिक परिवर्तन के बाद देश के सामने केवल शासन व्यवस्था को व्यस्थित करने की चुनौती नहीं थी, बल्कि सामाजिक पुनर्निर्माण, सांस्कृतिक सरंक्षण तथा लोकतांत्रिक मूल्यों को स्थापित करने का दायित्व भी था। इस परिवर्तित वातावरण का व्यापक प्रभाव साहित्य पर पड़ा। रचनाकारों ने राष्ट्र को केवल भौगोलिक सीमा के रूप में नही देखा, बल्कि उसे विविध संस्कृतियों, भाषाओं परंपराओं और मानवीय आकांक्षाओं के समन्वित रूप में प्रस्तुत किया। राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप समय के साथ निरंतर विकसित हुआ। प्रारंभिक दौर में जहाँ देशभक्ति, त्याग और सामूहिक एकता की भावना प्रमुख थी, वही बाद के वर्षों में सामाजिक विषमताओं आर्थिक असमानताओं, राजनीतिक, विसंगतियों तथा सांस्कृतिक चुनौतियों को भी राष्ट्रीय सरोकारों के रूप में देखा जाने लगा। राष्ट्र की प्रगति केवल विकास योजनाओं से संभव नही है, बल्कि सामाजिक न्याय, समान अवसर और मानवीय गरिमा की स्थापना भी उतनी ही आवश्यक है।

हिन्दी साहित्य ने इस काल में जनजीवन की वा स्तविक समस्याओं को अभिव्यक्ति प्रदान की। रचनाकारों ने गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा जातिगत असमानता तथा सामाजिक विषमताओं को राष्ट्रीय विकास के मार्ग में बाधक तत्वों के रूप में देखा। साहित्य में राष्ट्रप्रेम का स्वर केवल भावनात्मक स्वर पर नही, बल्कि सामाजिक उत्तरदायित्व और जनकल्याण की भावना के रूप में भी व्यक्त हुआ।

बदलते सामाजिक सदर्भों में राष्ट्रीय चेतना का अर्थ केवल राष्ट्र के प्रति समर्पण नही रह जाता, बल्कि नागरिक उत्तरदायित्व, सामाजिक संवेदनशीलता और लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा भी उसका अभिन्न अंग बन जाती है। इस दृष्टि से द्रौपदी का पुर्नपाठ वर्तमान समाज में व्याप्त असमानताओं, लैंगिग, भेदभाव, और नैतिक से पर गंभीर विचार करने के लिये प्रेरित करता है। यह कृति अतीत और वर्तमान में बीच एक सार्थक संवाद स्थापित करती।

निष्कर्ष –

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप एक निरंतर विकसित होने वाली प्रक्रिया के रूप में सामने आता है।, जिसमें समय, समाज और व्यक्ति के अनुभवों का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। यह स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रता के पश्चात् साहित्यकारों ने राष्ट्र को सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि के माध्यम से साहित्य के क्षेत्र में अध्ययन किया है। अज्ञेय के साहित्य में जहाँ व्यक्ति की आंतरिक स्वतंत्रता, आत्मबोध और सांस्कृतिक चेतना के माध्यम से राष्ट्र की गहराई को समझने का प्रयास किया गया है। वहीं यशपाल के साहित्य में सामाजिक यथार्थ, वर्ग संघर्ष और राजनीतिक परिस्थितियों के माध्यम से राष्ट्र की वास्तविक स्थिति को उजागर किया गया है। उदाहरण के रूप में जहाँ अज्ञेय व्यक्ति की चेतना को राष्ट्र की प्रगति का आधार मानते हैं, वहीं यशपाल सामाजिक समानता को राष्ट्र की स्थिरता के लिए आवश्यक बताते हैं। हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का विकास एक ऐसे समग्र दृष्टिकोण के रूप में हुआ है, जो व्यक्ति और समाज दोनों को एक साथ जोड़ता है और राष्ट्र को एक सुदृढ़ तथा संतुलित दिशा प्रदान करता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची –

(1) अज्ञेय (1941,1944) – "शेखर – एक जीवनी", सरस्वती प्रेस, बनारस, पृष्ठ संख्या 78, 102

(2) यशपाल (1958, 1960) – "झूठा सच", लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 233, 210

(3) गुप्त, सदानंद प्रसाद (2022) – "हिन्दी साहित्य में सृष्टि और दृष्टि" लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज उत्तरप्रदेश, पृष्ठ संख्या 3, 10

(4) शर्मा, डॉ.स्नेहलता (2024) – "निराला के काव्य में राष्ट्रीय चेतना" अनुबुक्स, मेरठ, उत्तरप्रदेश, पृष्ठ संख्या 22, 37

(5) अशोधिया, आनंद कुमार (2025) – "द्रोपदी एक लोक चेतना", रागनी समीक्षा और पुनर्पाठ, अविकावनी पब्लिशर्स, पृष्ठ संख्या 50, 58